

## ‘मेरिट’ की मेरिट

बहुत से शिक्षा दार्शनिकों का मानना है कि शिक्षा समाज में अन्यायपूर्ण एवं अनैतिक संरचनाओं समाप्त करने और आर्थिक रूप से पिछड़े तबकों को वैयक्तिक और सामाजिक मुक्ति के लिए बौद्धिक चिन्तन और कौशलों से युक्त करती है। यह एक तर्क है जो स्कूली शिक्षा को वैधता प्रदान करता है। यदि स्कूली शिक्षा के इतिहास पर नजर डालें तो यह स्पष्ट होता है कि स्कूली शिक्षा ने एक हद तक अवसरों की समानता प्रदान करने, सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन को संभव बनाने में मदद की है। विभिन्न समाजों में जहां बहुत-सी जातियों, प्रजातियों और वर्गों को शिक्षा के अवसर नहीं मिलते थे, वे अब उनकी पहुंच में हैं। भारत में ऐसी बहुत-सी जातियां हैं जिनकी शिक्षा तक पहुंच नहीं थी, अब शिक्षा उनकी पहुंच में है। लेकिन यह भी सही है कि स्कूली शिक्षा ने वंचित वर्ग को अभी समुचित अवसर उपलब्ध नहीं करवाए हैं जिनके आधार पर कहा जा सके कि वे सामाजिक गतिशीलता में सहगामी हुए हैं। यदि जातीय या धार्मिक आधारों को छोड़ भी दें तो, अभी तक शहरी वंचित वर्ग को सामाजिक गतिशीलता के थोड़े और ग्रामीण वंचित वर्ग को उससे भी कम अवसर मिल पाए हैं। यह सही है कि शिक्षा की पहुंच सभी वर्गों तक बढ़ी है और सभी वर्गों को तुलनात्मक रूप से सामाजिक गतिशीलता के ज्यादा अवसर मिल रहे हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि सामाजिक गतिशीलता का मिथक मुख्यतः मध्यम वर्ग के इर्द-गिर्द ही सिमटकर रह जाता है। यह स्थिति हमारा ध्यान उस सावधान विवेचना की ओर खींचती है कि वे क्या कारण हैं जिनकी वजह से शिक्षा सामाजिक गतिशीलता के समान अवसर सभी वर्गों को उपलब्ध नहीं करवा पा रही है। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए मार्टिन कॉरनॉय कहते हैं कि पूंजीवादी समाज में स्कूली शिक्षा का उपक्रम उत्पादन और राजनैतिक सत्ता के अनैतिक एवं अन्यायपूर्ण ढांचे को बनाए रखने के लिए गढ़ा जाता है। उनका मानना है कि पूंजीवादी समाज में बौद्धिक चिन्तन स्कूली शिक्षा प्रक्रिया का प्राथमिक उद्देश्य नहीं होता बल्कि वे इसे शिक्षा प्रक्रिया का उप-उत्पाद मानते हैं जो कि मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति की प्रक्रिया के बीच में उत्पन्न हो जाते हैं।

लोकतांत्रिक समाज में विचारधाराओं के संघर्ष को एक जायज प्रक्रिया माना जाता है। विभिन्न हित समूह अपने हितों की दृष्टि से तमाम प्रक्रियाओं को आकार देने की कोशिश करते हैं। इन हितों की टकराहट की प्रक्रिया का हिस्सा शिक्षा भी बन जाती है। इसी संघर्ष में शिक्षा अपना चरित्र ग्रहण करती है। यह इसलिए विचारणीय मुद्दा बन जाता है क्योंकि एक लोकतांत्रिक समाज में शिक्षा जो भी चरित्र ग्रहण करती है क्या वह वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप है ? क्या वह अपनी आवाज को सशक्त स्वर नहीं दे पाने वाले वर्गों को विकास के समान अवसर उपलब्ध करवा पाने में सक्षम है ? क्या वह जाति, लिंग, प्रजाति, धर्म और वर्ग आदि के भेद को भुलाकर सभी को सामाजिक गतिशीलता में सहभागी बना पा रही है ?

शिक्षा समाज विज्ञानियों के अध्ययन हमें यह बताते हैं कि स्कूली शिक्षा प्रक्रियाएं समाज में किस प्रकार काम करती हैं और किस तरह के समाज की रचना की ओर अग्रसर हैं। साथ ही शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के संबंध की पड़ताल करते हैं। अमन मदान का लेख ‘योग्यता का समाजशास्त्रीकरण’ समाज में योग्यता (मेरिट) की वस्तुनिष्ठ और निरपेक्ष लगने वाली अवधारणा का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह लेख योग्यता की आम समझ, कि वह जन्मजात, तयशुदा या स्थिर होती है, को प्रश्नित करते हुए उसके सामाजिक आयामों को रेखांकित करते हुए कहता है कि मनुष्य की क्षमताओं को परिभाषित करने वाले जैविक आधार सांस्कृतिक अनुभवों के साथ अन्तःक्रिया के बाद भिन्न-भिन्न रूप में सक्रिय और विकसित होते हैं। यह तर्क योग्यता के आधार पर समाज में मिलने वाले अवसरों में वस्तुनिष्ठता की पैरवी करने वाले उन तर्कों की कलाई खोलता है जो वंचना के शिकार रहे विभिन्न वर्गों को समतल धरातल पर खुली प्रतियोगिता के लिए आमंत्रित करने के लिए दिए जाते हैं। क्योंकि जिन वर्गों, प्रजातियों और लिंग को शिक्षा के अवसर नहीं मिले हैं उन्हें समतल धरातल पर खुली प्रतियोगिता के लिए आमंत्रित करना उनकी उस सामाजिक पृष्ठभूमि का नकार है जो कि तमाम तरह की वंचनाओं की शिकार रही है। अमन मदान योग्यता की अवधारणा में निहित विरोधाभासों को भी स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि योग्यता का आदर्श समतामूलक मूल्यों को अभिव्यक्त करता है और विरासत में पाए विशेषाधिकारों को खारिज करता है तथा यह सिद्ध करता है कि सामाजिक प्रतिष्ठा जन्म से नहीं कर्म से तय होनी चाहिए। लेकिन साथ ही योग्यता की अवधारणा व्यक्ति को सामाजिक ढांचे के हिस्से के रूप में देखने के बदले समाज के प्रभावों से निरपेक्ष व्यक्ति के रूप में मानती है और कर्म के बजाए जन्म के आधार पर मिलने वाले फायदों को आगे बढ़ाती है। यह लेख

उन प्रक्रियाओं को भी हमारे सामने रखता है जिनमें कि योग्यता के नाम पर लोकतांत्रिक कहे जाने वाले समाजों में किस तरह कुछ लोगों को अवसरों से वंचित किया जाता है। अमन मदान कहते हैं कि योग्यता की धारणा सामन्तवाद या जाति-व्यवस्था आधारित व्यवस्थाओं से बेहतर है। लेकिन साथ ही वे कहते हैं कि अभी योग्यता की धारणा पर पुनर्विचार कर उसे ऐसा बनाना होगा जो मानवीय संभावनाओं को अधिक सटीक रूप से अभिव्यक्त कर सके।

प्रो. कृष्ण कुमार एवं लतिका गुप्ता का लेख 'बालिका सशक्तिकरण में कमी क्या है ?' को भी योग्यता की इस बहस के साथ रखकर देखा जा सकता है। यदि हम इस सवाल का जवाब ढूंढना चाहें कि क्या शिक्षा प्रक्रियाओं में भेदभाव और संसाधनों के असमान वितरण से संचालित प्रक्रियाओं का योग्यता के विकास पर क्या असर पड़ता है या दूसरे शब्दों में, यदि विकास के लिए मिलने वाले सामाजिक और शिक्षायी अवसरों में गैर-बराबरी हो तो इसका योग्यता के विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? यदि इन सवालों के प्रकाश में इस लेख को पढ़ें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र की वंचित सामाजिक पृष्ठभूमि की उन बालिकाओं को शिक्षा का एक अवसर प्रदान करता है जो कि मुख्यधारा शिक्षा से छूट चुकी हैं। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के नियोजन पर उठाए गए सवाल यह दर्शाते हैं कि अभी भी बालिका सशक्तिकरण की जरूरत महसूस होने के बाद भी इन बालिकाओं के लिए किए जा रहे प्रयासों में सघनता नहीं है। लेख बताता है कि इन विद्यालयों में पैरा-टीचर्स की नियुक्ति, बालिकाओं के आवास, कक्षा-कक्षों एवं शिक्षकों के लिए आवास आदि की व्यवस्था समुचित नहीं है। इससे साबित होता है कि इन विद्यालयों का नियोजन पक्ष इस योजना को गरीब बच्चों की गरीब शिक्षा की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। इस लेख में जवाहर नवोदय विद्यालय एवं कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के बजटीय तुलना यह दर्शाती है कि वंचित पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए किए जा रहे शिक्षा प्रयासों में असमानता है। ऐसे में पुनः यह सवाल प्रमुख रूप से उभरता है कि क्या ऐसी स्थितियों में पढ़ने वाली बालिकाएं सामाजिक गतिशीलता का हिस्सा बन पाएंगी ?

भाषा का सवाल मानवीय विकास से जुड़ा हुआ है। भाषाओं का सिकुडता संसार इस ओर हमारा ध्यान खींचता है कि कुछ भाषाएं अपना अस्तित्व खो रही हैं और उन भाषाओं से जुड़े समुदाय अपनी सांस्कृतिक विरासत से च्युत हो रहे हैं। यह शिक्षा के लिहाज से सामान्य घटना नहीं है। यदि मातृभाषा के मर्म को हम अप्रीकी विचारक और साहित्यकार न्गुगी वा थ्योंगो के शब्दों में समझना चाहें तो 'भाषा केवल शब्दों का जाल नहीं थी। इसके अंदर कुछ ऐसी शक्ति थी जो शब्दों में शब्दकोपीय अर्थों से भिन्न थी। ... इस प्रकार विषयवस्तु से बढ़कर हमने भाषा का संगीत सीखा। बिंबों और प्रतीकों के जरिए भाषा ने हमें एक नई विश्वदृष्टि दी, जिसका अपना सौन्दर्य था।' यह मातृभाषा में ही संभव है क्योंकि बच्चे के दिमाग में दुनियावी वास्तविकता भाषा के माध्यम से ही निवास करती है। यदि इसे भाषा का सही चारित्रिक गुण माना जाए तो इसके निहितार्थ हमें प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा की प्राथमिकता की ओर ले जाते हैं। शिक्षा में यह बहस पुरानी है और समय-समय पर उठती रही है कि मातृभाषा को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए क्योंकि बच्चे का सीखना मातृभाषा में ज्यादा बेहतर होता है। मातृभाषा और बच्चों के सीखने, मातृभाषा और समझ के रिश्ते पर एक परिसंवाद एनसीईआटी ने शुरू किया है। पटना में आयोजित इस परिसंवाद की एक कड़ी की रिपोर्ट निरंजन सहाय ने प्रस्तुत की है जो कि मातृभाषा और शिक्षा के साथ उसके संबंध के सवालों को उठाती है। इसी बहस को 'भाषा और अधिगम' पुस्तक की समीक्षा आगे बढ़ाती है। जेम्स ब्रिटन की यह पुस्तक भाषा के वृहत्तर प्रकार्यों को हमारे सामने रखती है। यदि जन्म के बाद भाषा के माध्यम से दुनियावी वास्तविकता का प्रतीकीकरण करते हुए समझ बनती है तो यह तथ्य महत्वपूर्ण हो जाता है कि मातृभाषा ही ऐसा माध्यम है जिसमें बच्चे की सांस्कृतिक अस्मिता की निर्मिति होती है। मातृभाषा का नकार बच्चे की सांस्कृतिक अस्मिता का नकार भी होगा और बच्चे के विकास पर इसके प्रतिगामी असर पड़ेगे। भारत के संदर्भ में यह बहस इसलिए भी प्रमुख हो जाती है कि भारतीय समाज बहुभाषी समाज है।

शिवरतन थानवी अपने लेख में बच्चों की सीखने की प्रक्रिया पर सहज-सरल और सुबोध परिचय देते हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि घर-परिवार या स्कूल में बच्चों को पढ़ाते वक्त किसी प्रकार की गलती करने पर किसी कचहरी में खड़ा कर दिया जाता है। जबकि यह स्वभाविक है कि सीखने की प्रक्रिया में बच्चे गलती करते हैं। प्रभात की बाल साहित्य समीक्षा बच्चों की कल्पना को वयस्कों के तमाम डरों से बांधने की खिलाफत करती है वहीं पल्लव की समीक्षा सांप्रदायिकता की पूर्वाग्रहों से बनी अनगढ़ समझ पर बच्चों और शिक्षकों के साथ तार्किक तरीके से बातचीत का प्रस्ताव देती है। ♦

शिवरतन